Chapter-3

अध्याय : तीन

:: शैशवकालीन संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्दजी के कथा-साहित्य का अनुशीलन ::

:: अध्याय: तीन ::

:: शैशवकालीन संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्दजी का कथा-साहित्य ::

किसी भी मनुष्य के जीवन में उसका बचपन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण होता है । उस समय उसके "लिखिड़ो" में जो संगृहीत हो जाता है, उसका प्रभाव ताज़िन्दगी रहता है । कई बार तो उसे स्वयं नहीं मालूम होता कि किसी विशेष परिस्थिति में उसका व्यवहार अलग या विचित्र क्यों हो जाता है । भारतीय मनीषा तो गर्भस्थ शिशु तक के संस्कारों को मानती रही है । महाभारत की वह कथा बहुत ही प्रचलित है कि अभिमन्यु ने चक्रव्यूह की पद्धति तब सीख ली थी जब वह अपनी माँ सुभद्रा की कोख में था । अतः हमारे यहाँ सम्भ्रान्त और शिक्षित परिवारों में तो एक प्रथा-सी है कि जब कोई भी स्त्री गर्भवती अवस्था में होती है तब उसे विशेष प्रकार का नैतिक या धार्मिक साहित्य पढ़ने या सुनने के लिए कहा जाता है । कुछ मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि यदि कोई स्त्री गर्भवती अवस्था में पढ़ती या पढ़ाती है तो उसके बच्चे पढ़ने में तेज़ निकलते हैं ।

मैं एक महिला को जानती हूँ जो "कोकरोज फोबिया" से पीड़ित है । वह छिपकली देख सकती है, तरह-तरह के जहरीले कीड़े, यहाँ तक कि साँप और बिच्छू को भी देख लेती है, परंतु कोकरोज को नहीं देख सकती है । कोकरोज से वह इतना डरती है कि बाथरूम जाने से पूर्व वह बराबर देख लेती है कि कहीं उसमें कोकरोज तो नहीं है । इसका कारण उनके बचपन का कोई प्रसंग होना चाहिए, जो शायद उन्हें भी नहीं मालूम है । मनोविज्ञान की भाषा में इसे "फोबिया" कहते हैं । ऐसे लोगों को तरह-तरह के "फोबिया" होते हैं । किसीको कुत्ते का, किसीको बिल्ली का, किसीको सांढ़ या भैंसे का, किसीको अंधेरे का, किसीको छिपकली का तो किसीको साँप या बिच्छूxxx बिच्छू का विशेष डर लगता है । वैसे साँप और बिच्छू से तो प्रायः सभी डरते हैं, परंतु "फोबिया-पीड़ित" लोगों का डर विशेष प्रकार का होता है । वे उन्हें चित्रों पर भी नहीं देख सकते । इन सबके पीछे उनके शैशवकालीन प्रभाव या कुप्रभाव ही कारणभूत होते हैं ।

यों शैशव में पड़े हुए प्रभाव, अच्छे या बुरे, जीवन को दूर तक प्रभावित करते हैं । राजकमल चौधरी कृत उपन्यास "मछली मरी हुई" का निर्मल पदमावत xxxxx स्त्री-जाति से घृणा करता है, क्योंकि उसकी माँ जब वह बहुत छोटा था, तब उसे निराधार छोड़कर किसीके साथ भाग गई थी । बचपन से बेघर होने का ऐसा प्रभाव उसके शिशु-मन पर पड़ा कि मनोविज्ञान के "अतिक्षतिपूर्ति सिद्धांत"[1] के अनुसार उसने [illegible] कल्याणी-मेन्शन के नाम से कलकत्ता में इलीजी स्टेट में एक महल जैसे "[illegible]" का निर्माण किया ।[2]

कुमारी [illegible] नामक एक जर्मन विदुषी ने बर्लिन की वेश्याओं के संबंध में खोज की तो उन्हें ज्ञात हुआ कि बहुत-सी वेश्याएं नित्य ईश प्रार्थना करती हैं, यहाँ तक कि उपवास आदि भी रखती हैं, यद्यपि जहाँ तक पेशा करने का संबंध है, वे उसे बराबर करती हैं ।[3] यह भी शुरू के, बचपन के संस्कारों के कारण हुआ है ।

भय , घृणा , क्रोध , दब्बूपन आदि कुछ ऐसे भाव हैं जिनका उत्स बचपन में ढूँढा जा सकता है । जिन चीजों या व्यक्तियों से बचपन से ही भय या घृणा होती है , आगे चलकर भी उनका मार्जन लगभग असंभव-सा हो जाता है । जो व्यक्ति बचपन में ही दब जाता है , वह आगे भी अनेक लोगों से दबता चला जाता है ।

यह बात तो सामान्य मनुष्य की है । लेखक या कवि तो और भी संवेदनशील होता है , अतः शैशवकालीन संघर्षों या अनुभवों का प्रभाव उसके जीवन में तो सविशेष देखने को मिलेगा । साहित्य से मनोविज्ञान का बड़ा गहरा संबंध होता है । यजुर्वेद में कहा गया है — " जो जाग्रत अवस्था में दूर चला जाता है और सुप्त अवस्था में भी इसी प्रकार गतिशील होता है , ऐसा दिव्य-गुण विभूषित और ज्योतियों की ज्योति , यह मेरा मन , शिव संकल्प युक्त है । "[4] इस प्रकार यजुर्वेद में शिव संकल्पयुक्त मन को चेतन व अचेतन दोनों अवस्थाओं में गतिशील होना स्वीकार किया गया है । इस प्रकार मन को वहां बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है । स्वयं प्रेमचन्दजी "निर्मला" उपन्यास में इस मन की गति से चकित हैं — " मन तेरी गति कितनी विचित्र है , कितनी रहस्य से भरी हुई , कितनी दुर्बोध । तू कितनी जल्दी रंग बदलता है । इस कला में तू निपुण है । आतिशबाजी की चरखी को भी रंग बदलते कुछ देर लगती है । पर तुझे रंग बदलने में उसका लक्षांश भी नहीं लगता । "[5]

शैशवावस्था में इस मन पर जो दबाव पड़ता है , शिशु को जिन संघर्षों और यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता है , उसका असर , यदि वह शिशु आगे चलकर लेखक बनता है , तो उसके साहित्य पर अवश्य पड़ता है । प्रस्तुत अध्याय में हम उसीका आकलन करने जा रहे हैं कि प्रेमचन्द के साहित्य में — उपन्यास और कहानियों में — इन शैशवकालीन संघर्षों के अक्स कितने और कैसे पड़े हैं । पूर्ववर्ती अध्याय में नाना प्रकार के संघर्षों की जहां चर्चा की है , वहां प्रेमचन्द के बचपन

के संघर्षों के विषय में विस्तार से चर्चा हुई है । अतः यहां उनकी पुनः चर्चा न करते हुए उन-उन संघर्षों के परिप्रेक्ष्य में मुंशीजी के कथा-साहित्य की पड़ताल का उपक्रम यहां है ।

(क) गरीबी और अभाव :

प्रेमचन्दजी के समूचे जीवन में गरीबी और अभाव को लक्षित किया जा सकता है, परंतु यहां उस गरीबी और अभाव का जिक्र है, जिसे उन्होंने बचपन में झेला है । मुंशी अजायबलाल की आमदनी सीमित थी और पारिवारिक जिम्मेदारियां काफी थीं, यह पहले बताया जा चुका है । परिवार की गरीबी और अभाव का प्रभाव उस परिवार के बच्चों पर भी पड़ता है ।

संपन्न घरों में ढेर सारी चीजें पड़ी रहती हैं और बच्चे उन्हें छूते तक नहीं हैं, क्योंकि खा-खा के वे अघा जाते हैं । उनका मन तृप्त हो जाता है । परंतु जिन घरों में गरीबी होती है, वहां बच्चे छोटी-छोटी चीजों के लिए भी तरसते हैं । कई बार उन चीजों को पाने के लिए वे मौका मिले तो चोरी भी करते हैं । प्रेमचन्दजी ने भी, (बाल्यकाल में ही) ऐसी चोरी की थी । अपने चचेरे भाई के साथ मिलकर घर से एक रुपया उड़ाया था । इस घटना का जिक्र उनकी "चोरी" नामक कहानी में मिलता है ।

यह कहानी आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है । कथानायक (शिशु) "मैं" प्रेमचन्द (नवाब) का ही मानो प्रतिरूप है । चचेरे भाई का नाम हलधर है । एक दिन पहले चाचाजी ने सन बेचा था । उसका एक रुपया ताक पर रखा था । दूसरे दिन जमींदार को देना था । पर हलधर की नजर उस पर पड़ी तो उसने वह रुपया चुरा लिया । हलधर ने जब "मैं" को रुपया दिखाया तो दोनों की बाछें खिल गईं और कई-कई सपने उनकी आंखों में लहराने लगे । रुपये का आनंद था तो दूसरी तरफ चाचा का डर भी था । वैसे तो सीधे-सादे थे, परंतु क्रोध आने पर आगबबूला हो जाते थे, हलधर यह अच्छी तरह जानता था ।

उस रुपये को लेकर उन दोनों बच्चों में जो मनोसंघर्ष चलता है । उसका बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखक ने किया है , यथा — " हम दोनों ने कई मिनट तक इन्हीं बातों पर विचार किया , और आखिर यही निश्चय हुआ कि आई हुई लक्ष्मी को न जाने देना चाहिए । एक तो हमारे ऊपर संदेह होगा ही नहीं , और अगर हुआ भी तो हम साफ इन्कार कर जायेंगे । कहेंगे , हम रुपया लेकर क्या करते । थोड़ा सोच-विचार करते तो , यह निश्चय पलट जाता , और वह बीभत्स लीला न होती , जो आगे चलकर हुई , पर उस समय हममें शांति से विचार करने की क्षमता ही न थी । "[6]

गरीबी और अभाव की स्थिति में बच्चे की मनःस्थिति कैसी होती है , उसका सटीक चित्रण इस कहानी में मिलता है । चाहते तो ये लोग रुपया उड़ा देते । पर ये धीरे-धीरे खर्च करना चाहते हैं । गरीबी समझदारी की जननी है । इनके स्थान पर कोई अमीर लड़का होता तो वह तो रुपया खर्च कर डालता । इसका वर्णन लेखक यों करते हैं — "हवाई महल बनाते थे , हवाई किले बनाते थे । यह अवसर बड़े भाग्य से मिला था । जीवन में फिर शायद ही यह अवसर मिले । इसलिए रुपये को इस तरह खर्च करना चाहते थे कि ज्यादा से ज्यादा दिनों तक चल सके । यद्यपि उन दिनों पांच आने सेर बहुत अच्छी मिठाई मिलती थी और शायद आधा सेर मिठाई में हम दोनों अफर जाते ; लेकिन यह खयाल हुआ कि मिठाई खायेंगे तो रुपया आज ही गायब हो जायगा । कोई सस्ती चीज खानी चाहिए , जिसमें मजा भी आये , पेट भी भरे और पैसे भी कम खर्च हों । आखिर अमरूदों पर हमारी नज़र गई । हम दोनों राजी हो गये । दो पैसे के अमरूद लिए । सस्ता समय था , बड़े-बड़े बारह अमरूद मिले ।"[7]

फिर तो उस रुपये में से मौलवीजी को बारह आने फीस के भी चुका दिये जाते हैं । तय यह होता है कि जब फीस के पैसे मिलेंगे , तो फिर उसे खर्च करेंगे । तब तक इन दो-चार आनों से काम चलायेंगे । मेला देखने का प्लान भी बनता है , परंतु मौलवी साहब हलधर को छुट्टी नहीं

देते । "मैं" उसकी राह देखता है । पर जब वह नहीं आता , तब शंका-कुशंका करते हुए घर की राह पकड़ लेता है । रास्ते में उसे एक दूसरे बच्चे से पता चलता है कि उसके चाचा आये थे और हलधर को कान पकड़कर पीटते हुए ले गये । उसकी रूह कांपने लगी । इस कहानी में लेखक ने जो शिशु-जीवन का सत्य रखा है , वह उनके अपने अनुभव पर आधृत है ।

गरीबी और अभाव बच्चे में चटोरापन ला देता है । मुंशीजी का बचपन भी अभावों में गुजरा है । उन दिनों गुड़ भी उनके लिए किसी नेमत से कम न था । घर के लिए लाये हुए गुड़ को वे कैसे चट कर जाते हैं , उसका चित्रण "चोरी की बुराई" नामक कहानी में मुंशीजी ने किया है । गुड़ बचपन से ही उनको बहुत प्रिय था । वे गुड़ को मिठाइयों का बादशाह समझते थे । सारी ज़िन्दगी गुड़ का यह प्रेम इसी तरह बना रहा । खाने के साथ थोड़ा-सा गुड़ जरूरी था ।[8]

अम्मां तीन महीने के लिए मैके गई थीं । जाते समय मन भर गुड़ एक मटके में भर दिया था । बच्चे के लिए भी एक सकोरे में थोड़ा-सा अलग रख दिया था । वह तो एक हफ्ते में चट कर गये और फिर बारी आयी मटकीवाले गुड़ की । इसका बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण मुंशीजी ने इस कहानी में किया है । "अपने को कोसता , धिक्कारता — गुड़ तो खा रहे हो मगर बरसात में सारा शरीर सड़ जायगा , गंधक का मरहम लगाये घूमोगे , कोई तुम्हारे पास बैठना भी न पसंद करेगा । कसमें खाता, विद्या की , मां की , स्वर्गीय पिता की , गऊ की , ईश्वर की ... कुछ भी काम न आया , तो बड़े भक्तिभाव से ईश्वर से प्रार्थना की — भगवान यह मेरा चंचल लोभी मन मुझे परेशान कर रहा है , मुझको शक्ति दो कि उसको वश में रख सकूं । मुझे अष्टधातु की लगाम दो जो उसके मुंह में डाल दूं । "[9] यहां तक कि कोठरी में ताला लगाकर चाबी दीवार की संधि में डाल दी जाती है , दुबारा कुएं में डाल दी जाती है , पर सब बेकार । धीरे-धीरे करके सारा गुड़ उनके पेट में चला जाता है । यह कहानी भी आत्मकथनात्मक ढंग से लिखी गई है । उसमें निरूपित बच्चा भावुक ही है ।

संयुक्त परिवारों में कई बार ऐसा भी होता है कि घर का जो सदस्य कमाता नहीं है, या कम कमाता है, तो उसके बीवी-बच्चों के साथ उपेक्षा का व्यवहार होता है। प्रेमचन्द की कहानी "शंखनाद" में इसे लक्षित किया जा सकता है। भानु चौधरी के तीन लड़के हैं — वितान, शान और गुमान। इनमें गुमान रात-दिन मटरगश्ती करता रहता है। घर के कामकाज में हाथ नहीं बटाता और अपनी मस्ती में डोलता रहता है। पिता तथा भाइयों ने उसे बहुत समझाने की कोशिश की पर पत्थर पर पानी। एक दिन एक खोंचेवाला आया। घर के बाकी बच्चे कुछ-न-कुछ ले गये और उसके बच्चे को कुछ न मिला। बच्चा रोने लगा तो ऊपर से उसकी माँ ने उसे मारा। इस दृश्य को देखकर गुमान की आँखें भर आती है और वह अपनी पत्नी से कहता है — " बच्चे पर इतना क्रोध क्यों करती हो ? तुम्हारा दोषी मैं हूं ... परमात्मा ने चाहा तो कल से लोग इस घर में मेरा और मेरे बाल-बच्चों का भी आदर करेंगे। तुमने आज मुझे सदा के लिए जगा दिया, मानो मेरे कानों में शंखनाद कर मुझे कर्म-पथ में प्रवेश करने का उपदेश दिया हो। " 10

गरीबी और अभाव के कारण बच्चा अपने सहज नैसर्गिक आनंद की पूर्ति के लिए बाहर का सहारा लेता है। उसमें गुल्ली-डंडा, पतंगबाजी, गोली खेलना, ताश खेलना, मछली फंसाना आदि सभी आ जाते हैं। उसमें बच्चा आवारागर्दी की राह पर चला जाता है। मुंशीजी भी शुरू में उधर प्रवृत्त हो गये थे, परंतु बाद में उनकी आवारगी एक दूसरे रास्ते (किस्से-कहानियों और उपन्यासों को पढ़ना। एक जमाने में उपन्यासों को पढ़ना भी आवारगी में ही शामिल था) चल पड़ी। अतः बच्चों के इन खेलों का जहां कहीं भी वर्णन आया है, वह सजीव बन पड़ा है। उपर्युक्त कहानी "शंखनाद" में भी लेखक ने गुमान की आवारागर्दी का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है, यथा — " तीसरे लड़के का नाम गुमान था। वह बड़ा रसिक, साथ ही उद्दण्ड था। मुहर्रम के ढोल इतने जोरों से बजाता कि कान के पर्दे फट जाते। मछली फंसाने का बड़ा शौकीन था। बड़ा रंगीला जवान था। खंजड़ी बजा-बजा कर जब मीठे स्वर में

ख्याल गाता, तो रंग जम जाता । उसे दंगल का ऐसा शौक था कि कोसों तक धावा मारता, पर घर वाले कुछ ऐसे शुष्क थे कि उसके व्यसनों से तनिक भी सहानुभूति न रखते थे । " 11

गरीबी और अभाव के कारण कई बार बच्चे में जरूरत से ज्यादा समझदारी आ जाती है । यह भी मनोविज्ञान के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त के कारण ही होता है । बच्चा अपने एक क्षेत्र के अभाव की पूर्ति समझदारी के द्वारा करता है । उसके कारण उसे बड़े-बूढ़ों की प्रशंसा सुनने को मिलती है । अज्ञेय ने एक स्थान पर कहा है कि दुःख मनुष्य को माँजता है । इस सत्य की परिणति हमें प्रेमचन्द की "ईदगाह" कहानी से हो जाती है । "ईदगाह" के हामिद के अब्बा और अम्मी दोनों का इन्तकाल हो चुका है । बूढ़ी दादी अमीना बच्चे को जैसे-तैसे पाल रही है, क्योंकि घर में गरीबी और अभाव का साम्राज्य है -- " पैसे होते तो [मेले से] लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती । यहाँ तो घंटों चीजें जमा करते लगेंगे । मांगे ही का तो भरोसा ठहरा । उस दिन फहीमन के कपड़े सिले थे । आठ आने पैसे मिले थे । उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए, लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती । ... अब तो कुल दो आने पैसे बच रहे हैं । तीन पैसे हामिद की जेब में, पांच अमीना के बटुवे में । यही तो बिसात है और ईद का त्यौहार, अल्लाह ही बेड़ा पार लगाए । " 12

इन्हीं तीन पैसों को लेकर हामिद ईदगाह के मेले में दूसरे बच्चों के साथ जाता है । दूसरे बच्चे जब जलेबियां और मिठाइयां खाते हैं, तब हामिद तरस-तरस के रह जाता है । दूसरे बच्चे खिलौने लेते हैं । महमूद सिपाही लेता है, मोहसिन भिश्ती और नूरे वकील लेता है । परंतु हामिद चिमटा लेता है, क्योंकि रोटियां सेंकते समय दादीमा का हाथ जल जाता था । जब दादीमां ने पूछा कि सारे मेले में तुझे और कोई चीज़ न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया ? तब हामिद ने अपराध-भाव से कहा — "तुम्हारी उंगलियां तवे से जल जाती थीं, इसलिए मैंने इसे लिया । बुढ़िया का क्रोध तुरंत स्नेह में बदल गया, और

स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक, मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग, कितना सद्भाव और कितना विवेक है। दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा? इतना जब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद् हो गया। और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई है। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएं देती जाती थीं और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता।" [13]

जिस बच्चे ने अपने बचपन में गरीबी और अभाव देखा हो उसके अन्तर्मन में क्षुधा या भूख ऐसी हावी हो जाती है कि खाने-पीने की चीजों के लिए उसका मन सदैव ललक का अनुभव करता है। प्रेमचन्द में भी यह ललक मिलती है। फलतः उनकी कथा-सृष्टि में वे इस भूख का सटीक वर्णन करने में सफल होते हैं। जैसे "कफ़न" कहानी के माधव और घीसू की भूख। घीसू अपने जीवन के यादगार प्रसंगों में ठाकुर के यहाँ हुए भोज को गिनाता है। "वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला लड़कीवालों ने सबको भरपेट पूड़ियां खिलाई थीं, सबको! छोटे-बड़े सबने पूड़ियां खाई और असली घी की! चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई, अब क्या बताऊँ कि उस भोज में क्या स्वाद मिला, कोई रोक-टोक नहीं थी, जो चीज चाहो, माँगो, जितना चाहो, खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया, कि किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसनेवाले हैं कि कि पत्तल में गरम-गरम गोल-गोल सुवासित कचौड़ियां डाल देते हैं।" [14]

उसी प्रकार "बूढ़ी काकी" कहानी में बूढ़ी काकी की जो बुभुक्षा है, उसका चित्रण प्रेमचन्दजी ही कर सकते हैं, क्योंकि क्षुधा क्या

होती है , उससे प्रेमचन्द का बचपन पूरी तरह से परिचित है । इस कहानी में बूढ़ी काकी के साथ घर के लोग बड़ा अन्याय करते हैं । घर में भोज था । अधैर्य के कारण बूढ़ी काकी सबके सामने आ जाती है । उसकी उन्हें यह सज़ा मिलती है कि उन्हें एक कोठरी में बन्द कर दिया जाता है । सोचा था कि बाद में कुछ दे देंगे , पर एक बार तो तरसाना ही है । घर की छोटी बच्ची लाड़ली अपनी दादी को बहुत चाहती है । आधी रात को जब वह अपने हिस्से की पूड़ियां लेकर पहुंचती है , तब चाची उन पर पूरी तरह से टूट पड़ती है । बच्ची को भी नहीं पूछती । पूड़ियां जब समाप्त हो जाती हैं तब वह लाड़ली को उस जगह ले जाने को कहती है जहां मेहमानों ने भोजन किया था । वहां जाकर चाची जूठी पत्तलों को चाटने लगती है । भूख के आगे उनकी बुद्धि , विवेक वग़ैरह सब नदारद हो जाते हैं ।

बाल्यकालीन गरीबी और अभाव के कारण ही प्रेमचन्दजी ने अपनी कथा-कृतियों में गरीबी का चित्रण अधिक किया है । "वरदान" की सुवामा, "सेवासदन" के कृष्णचन्द्र , चैतू और गजाधर ; व " प्रेमाश्रम" के बलराज और मनोहर , "रंगभूमि" का सूरदास , "गोदान" का होरी इन सभी पात्रों के जीवन में प्रेमचन्दजी ने भी कहीं-कहीं भीषण गरीबी का चित्रण किया है । गरीबी के कारण , और जिसने बचपन में गरीबी को झेला हो , ऐसा व्यक्ति कष्टसहिष्णु भी हो जाता है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में होरी , सूरदास वग़ैरह बड़े ही कष्टसहिष्णु नायक हैं । जिस लेखक ने बचपन में संघर्ष किया हो उसे बच्चों से विशेष सहानुभूति होती है । "रंगभूमि" का सूरदास मिठुआ नामक अनाथ बच्चे को बहुत प्यार करता है । वह उसे अपने हिस्से की मिठाई भी खिला देता है । मां-बाप दोनों प्लेग में मर चुके थे । " तीन साल से उसके पालन-पोषण का भार सूरदास पर ही था । वह इस बालक को प्राणों से भी प्यारा समझता था । आप चाहे फाके करे , पर मिट्ठू को तीन बार अवश्य खिलाता था । आप मटर चबाकर रह जाता था , पर उसे शक्कर और रोटी , कभी घी और नमक के साथ रोटियां खिलाता था । अगर कोई भिक्षा में

मिठाई या गुड़ दे देता , तो उसे बड़े यत्न से अंगोछे के कोने में बांध लेता और मिट्ठू को ही देता था । सबसे कहता , यह कमाई बुढ़ापे के लिए कर रहा हूं । अभी तो हाथ-पैर चलते हैं , मांग खाता हूं , जब उठ-बैठ न सकूंगा , तो लोटा-भर पानी कौन देगा ? मिट्ठू को सोते पाकर गोद में उठा लिया , और झोंपड़ी के द्वार पर उतारा । तब द्वार खोला , लड़के का मुंह धुलवाया , और उसके सामने गुड़ और रोटियां रख दीं मिट्ठू ने रोटियां देखीं , तो ठुनककर बोला — मैं रोटी और गुड़ न खाऊंगा । .... तो क्या खाओगे बेटा ? .. मैं तो दूध रोटी खाऊंगा । ... बेटा , इस जून खा लो । सबेरे मैं दूध ला दूंगा । " [15]

"कज़ाकी" कहानी का कज़ाकी भी बच्चों को बहुत प्यार करता था । इस कहानी को पढ़कर रविबाबू के "काबुलीवाला" की याद ताज़ा हो जाती है । वैसे तो कज़ाकी सभी बच्चों को बहुत प्यार करता था , परंतु एक बच्चा था जो उसे विशेष रूप से प्यारा था । वस्तुतः यह कहानी सच्चे चरित्र पर आधारित है । और कहानी का वह बच्चा प्रेमचन्द [नवाब] ही है ।[16] कज़ाकी उसके पिताजी के विभाग में डाक-हरकारा था । थैला एक तरफ रखकर वह बच्चों को लेकर मैदान में निकल जाता । कभी उनके साथ खेलता , कभी बिरहे गाकर सुनाता और कभी कहानियां सुनाता । "उसे चोरी और डाके , मार-पीट , भूत-प्रेत की सैकड़ों कहानियां याद थीं । मैं ये कहानियां सुनकर विस्मयपूर्ण आनंद में मग्न हो जाता ; उसकी कहानियों के चोर और डाकू सच्चे योद्धा होते थे , जो अमीरों को लूटकर दीन-दुःखी प्राणियों का पालन करते थे । मुझे उन पर घृणा के बदले श्रद्धा होती थी । " [17]

जब मुंशीजी उस हरकारे को नौकरी से अलग कर देते हैं तब उसकी बड़ी तीखी प्रतिक्रिया उस बच्चे पर होती है — " आह ! उस वक्त मेरा जी चाहता था कि मेरे पास सोने की लंका होती , तो कज़ाकी को दे देता और बाबूजी को दिखा देता कि आपके निकाल देने से कज़ाकी का बाल भी बांका नहीं हुआ । " [18]

"शंखनाद" कहानी में गुमान का और "मैकू" कहानी में मैकू का हृदय-परिवर्तन बच्चे की ममता के कारण ही होता है । मैकू पीनेवालों को कहता है — " यह [illegible] कांग्रेसवाले तुम्हारे दुश्मन नहीं है । तुम्हारे और तुम्हारे बाल-बच्चों की भलाई के लिए ही तुम्हें पीने से रोकते हैं । इन पैसों से अपने बाल-बच्चों की परवरिश करो, घी-दूध खाओ । घर में तो फाके हो रहे हैं, घरवाली तुम्हारे नाम को रो रही है, और तुम यहाँ बैठे पी रहे हो ? लानत है इस नशेबाजी पर । "[19]

घर में गरीबी का आगमन होता है तो सबसे पहले माँ-बाप की अर्थ-कुण्ठा की गाज बच्चों पर ही गिरती है । किसीका गुस्सा किसी पर उतरता है । अर्थाभाव में गृहिणी अपने पति पर, अपने भाग्य पर चिढ़ती है, पर वह चिढ़ उतरती है बच्चों पर । "निर्मला" उपन्यास की निर्मला जब तोताराम से विवाह करती है, तब तो तोताराम की माली हालत ठीक थी, परंतु मंसाराम वाली घटना के बाद वह टूट जाता है, जिसका असर उसकी वकालत पर पड़ता है । घर में गरीबी और अभाव का साम्राज्य छाने लगता है और उसका गुस्सा उतरता है जियाराम और सियाराम जैसे बच्चों पर, जिसके परिणाम-स्वरूप जियाराम गलत सोहबत में पड़कर घर में चोरी करता है और भेद खुल जाने पर आत्महत्या कर लेता है । इस बीच निर्मला को एक बच्ची होती है, तो उसका स्वभाव और भी कृपण और कर्कश हो जाता है, जिसके फलस्वरूप सियाराम साधुओं के साथ भाग जाता है ।[20]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि घर की गरीबी न केवल बड़ों को मारती है, बल्कि वह बच्चों के बचपने पर भी छुरियां चलाती हैं । उसके कारण बच्चों के कोमल दिमाग पर बुरा असर पड़ता है । उनमें चटोरापन आता है । खराब आदतें पड़ती हैं । बच्चा असमय बुढ़ियाने लगता है । या तो बच्चा गलत रास्ते पर चला जाता है या उसमें जिन्दगीभर का दब्बूपन समा जाता है ।

(७) भयाक्रांत स्थिति :

तत्कालीन संयुक्त परिवारों के अन्तर्गत घर का संत्रस्त वातावरण भी आ जाता है । कुछ परिवारों में चाहे गरीबी के कारण हो , या माँ-बाप के स्वभाव के कारण , या घर के अन्य सदस्यों में टकराव के कारण हो , घर का वातावरण तनावपूर्ण रहता है । संयुक्त परिवारों में प्रायः ऐसा होता है । घर के कुछ प्राणी तो मानो बच्चों के डर के लिए ही बने होते हैं । पिता , चाचा या ताऊ ऐसे लोगों में आते हैं । बच्चे की माँ यदि मर गई है , और पिताने दूसरा ब्याह कर लिया है , तो सौतेली माँ या विमाता का व्यवहार भी बच्चे के लिए त्रासपूर्ण हो जाता है । प्रेमचन्द का बचपन भी संयुक्त परिवार में गुजरा है । माँ की मृत्यु के कारण सौतेली माँ का दुर्व्यवहार भी उन्होंने झेला है । अतः उनकी अनेक कहानियों में बच्चों की भयाक्रांत स्थिति का वर्णन मिलता है । उसके कारण बच्चे कई बार घर से भाग जाते हैं , या आत्महत्या का रास्ता अख्तियार कर लेते हैं ।

गरीबी या अभाव के कारण भी घरेलू वातावरण कई बार तनावग्रस्त हो जाता है । "खून सफेद" का साधो पादरी मोहनदास के साथ इसीलिए भाग जाता है और विधर्मी तक हो जाता है । "बच्चे को गोद में लेकर खेमे में एक गद्देदार कोच पर बैठा दिया और तब उसे बिसकुट और केले खाने को दिये । लड़के ने अपनी ज़िन्दगी में इन स्वादिष्ट चीजों को कभी नहीं देखा था । " 21

"लांछन कथा" कहानी के मुंशी श्यामकिशोर को अपनी पत्नी देवी के चरित्र पर शंका जाती है । फलतः पति-पत्नी में झगड़े भी होते हैं । इसका प्रभाव बच्ची शारदा पर पड़ता है । मुन्नू मेहतर देवी से इस तरह की बातें करता है कि देवी को श्यामकिशोर पर शंका-कुशंका होने लगती है । जैसे वह एक दिन देवी से कहता है — " दालमंडी में सरकार के कोई रहती हैं क्या ? " देवी कहती है — " नहीं यहां तो

कोई मालिदार नहीं है । " तब मुन्नू कहता है — " तो कोई दोस्त रहते होंगे । सरदार को अक्सर एक कोठे पर से उतरते देखता हूं । " देवी पूछती है — "दालमंडी तो रंडियों का मुहल्ला है ? " [22]

इस प्रकार देवी के मन में श्यामकिशोर के लिए शक का कीड़ा डाल देता है । दूसरी तरफ रजामियां को लेकर अक्सर वह देवी से बतियाता रहता है , अतः एक-दो बार श्यामकिशोर उसके मुंह से रजा-मियां का नाम सुन लेता है । अतः वह भी अपनी सच्चरित्र पत्नी पर खिलावजह शक करने लगता है । फलतः दोनों का जीवन बराबे पर चढ़ जाता है , जिसमें भुगतना पड़ता है शारदा को ।

घर के बड़ों का बच्चों के कोमल मस्तिष्कों पर कितना आतंक होता है वह "चोरी" कहानी से भी फलित होता है । "मैं" और हलधर [चचेरा भाई] रुपया तो उड़ा लेते हैं , पर बाद में चाचा और पिता के डर से "मैं" की तो नानी मरने लगती है । घर आते-आते वह सारे ग्रामीण देवताओं का स्मरण कर लेता है । बच्चे पर बाप का कितना आतंक है । एक चित्र देखिए — " पिताजी ने जोर से डांटकर पूछा — बोलता क्यों नहीं ? तूने रुपया चुराया कि नहीं ? ... मैंने जान पर खेलकर कहा — ' मैंने कहां ...' मुंह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि पिताजी विकराल रूप धारण किए हुए दांत पीसते , झपटकर उठे और हाथ उठाए मेरी ओर चले । मैं जोर से चिल्लाकर रोने लगा । ऐसा चिल्लाया कि पिताजी भी सहम गए । ... शायद समझे कि जब अभी से इसका यह हाल है , तब तमाचा पड़ने पर कहीं इसकी जान ही न निकल जाय । " [23]

संयुक्त परिवारों में कई बार यह भी देखा जाता है कि जिस भाई का बाप नौकरी करता है , या ज्यादा कमाता है , बनिस्बत उसके दूसरे बच्चों को ज्यादा मार पड़ती है । "चोरी" कहानी में भी "मैं" तो साफ बच जाता है , पर हलधर की बहुत बुरी तरह से पिटाई होती है । इस बात को लेकर चाची कहती है — " झूठा तो तू है , और तो सारा संसार सच्चा है , तेरा नाम निकल गया है न ! तेरा बाप नौकरी करता , बाहर से रुपये कमा लाता , चार जने उसे भला आदमी कहते ,

तो तू भी सच्चा होता । अब तो तू ही झूठा है । जिसके भाग में मिठाई लिखी थी, उसने मिठाई खायी । तेरे भाग में तो भात खाना ही लिखा था । "[24] यहाँ पर लेखक ने चाची का तो मनोवैज्ञानिक निरूपण किया ही है, एक सामाजिक सच्चाई को सामने रखते हुए उस पर करारा व्यंग्य भी किया है ।

बच्चों का मन बड़ा कोमल होता है । साथ ही उनमें सांसारिक राग-द्वेष न होने से, या कम होने से, वे भगवान का रूप होते हैं । अतः घर में किसीके भी प्रति अन्याय होता है, उनके दिल को ठेस पहुंचती है । दादी-दादा या नाना-नानी या घर के बड़े-बूढ़ों से उन्हें विशेष लगाव होता है । परंतु घर के लोगों का, विशेषतः बच्चे के माँ-बाप का, उनके साथ यदि दुर्व्यवहार होता है, तो उससे भी बच्चों को मानसिक त्रास पहुंचता है । इस स्थिति का वर्णन "बूढ़ी काकी" कहानी बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है । बुद्धिराम ने अपने वाक्चातुर्य से बूढ़ी काकी की जमीन-जायदाद पर कब्जा कर लिया था । काकी के पति स्वर्ग सिधार गये थे । बेटे जवान हो-होकर चल बसे थे । बुद्धिराम तथा उसकी पत्नी रूपा का रुख उनके प्रति अच्छा न था । सम्पूर्ण परिवार में यदि काकी से किसीको अनुराग था तो वह बुद्धिराम की छोटी लड़की लाड़ली थी । लाड़ली अपने दोनों भाइयों के भय से अपने हिस्से की मिठाई-चबेना बूढ़ी काकी के पास बैठकर खाती थी । यही उसका रक्षागार था और यद्यपि काकी की शरण उनकी लोलुपता के कारण बहुत महंगी पड़ती थी, तथापि भाइयों के अन्याय से कहीं सुलभ थी ।[25] बुद्धिराम के बड़े लड़के सुखराम का तिलक आया था । घर में भोज का आयोजन था । बूढ़ी काकी खाने की बहुत ही चटोरी थी और जब देर तक कोई बुलावा नहीं आया तो धैर्य खोकर सबके सामने चली गई । बुद्धिराम और रूपा को यह बात नागवार गुजरी । उन्होंने उस दिन बूढ़ी काकी को खाना न देने का ठान लिया । अतः रात को बारह बजे चुपके-चुपके लाड़ली अपने हिस्से की पूड़ियां खिलाने बूढ़ी काकी के पास जाती है । यहां यह स्पष्ट हो गया है कि लाड़ली अपने मां-बाप से कितना डरती है

कि रात के अँधेरे में सबके सो जाने पर वह बूढ़ी काकी के पास जाती है । कहानी में यह भी रेखांकित हुआ है कि लाडली को अपने दो भाइयों से भी डर है । लड़कों के सम्मुख लड़कियों को कितना दबकर रहना पड़ता है, यह भी इससे सिद्ध होता है ।

"अब "निर्मला" उपन्यास में दहेज के कारण निर्मला जैसी सुंदर, सुशील और कमसीन लड़की का विवाह मुंशी तोताराम जैसे प्रौढ़ एवं दुहाजू व्यक्ति से हो जाता है । तोताराम के तीन लड़के हैं -- मंसाराम , जियाराम और सियाराम । निर्मला अपनी नियति से समझौता कर लेती है और शुरू-शुरू में उन बच्चों को भरपूर प्यार देने की चेष्टा करती है । इनमें मंसाराम लगभग निर्मला का हमउम्र है । अतः एक दृष्टि से तोताराम निर्मला के पिता की उम्र का हुआ । निर्मला मंसाराम से खूब हंसती-बोलती है । उसके साथ पढ़ाई की चर्चा करती है । फलतः तोताराम को निर्मला के और मंसाराम के संबंधों पर शंका होने लगती है । घर के सत्यानाश का बीज-वपन यहाँ से शुरू हो जाता है । मंसाराम की मृत्यु के उपरांत घर का वातावरण बिगड़ जाता है । जियाराम मंसाराम की मृत्यु के लिए निर्मला को ही दोषी मानता है । वह धीरे-धीरे निर्मला से दूर होता जाता है और शोहदों की सोहबत में पड़कर घर में चोरी करता है । चोरी जब पकड़ी जाती है तब वह आत्महत्या कर लेता है ।

"सातवें दिन संध्या समय जियाराम घर लौटा तो बहुत चिंतित था । आज तक उसे बचने की कुछ-न-कुछ आशा थी । माल अभी तक कहीं बरामद न हुआ था ; पर आज उस माल के बरामद होने की खबर मिल गई थी । इसी दम थानेदार कांस्टेबल को लेकर आता होगा । बचने का कोई उपाय नहीं । थानेदार रिश्वत देने से सम्भव है , मुकदमे को दबा दे । रुपये हाथ में थे । पर क्या बात छिपी रहेगी ? अभी माल बरामद नहीं हुआ , फिर भी सारे शहर में अफवाह थी कि बेटे ने माल उड़ाया है । माल मिल जाने पर तो गली-गली बात फैल जायेगी । वह फिर किसीको मुंह न दिखा सकेगा । " 26

निर्मला तो बेचारी जियाराम के केस को दबाने के लिए रिश्वत तक देने को राजी हो जाती है, परंतु बदनामी के भय से जियाराम ही आत्महत्या का रास्ता अपना लेता है। मंसाराम के बाद जियाराम की आत्महत्या से मुंशी तोताराम तथा निर्मला दोनों टूट जाते हैं। पहले तो तोताराम निर्मला पर जान छिड़कते थे, पर अब बात-बात में बिगड़ जाते हैं। दूसरी तरफ निर्मला को एक बच्ची होती है। बच्ची होने के बाद निर्मला को अब रात-दिन उसकी चिंता रहने लगती है। वह नहीं चाहती कि पैसों के अभाव में उसकी बच्ची किसी दुहाजू से ब्याही जाय। अतः अब बहुत कंजूस हो जाती है। एक-एक पैसे को सेंतने के चक्कर में सियाराम से भी वह दूर होती जाती है। बचत के ख्याल से वह सौदा सियाराम से मंगवाती है। उसमें भी खूब कतर-ब्योंत करती है। सौदा तौलाती है। जरा कम लगने पर वापस लौटाती है। कोई भी चीज दो-एक बार लौटाये बाद घर में नहीं आती, जिसके कारण सियाराम को दोनों तरफ से जलील होना पड़ता है। व्यापारी भी उसे जल्दी सौदा नहीं देते। स्कूल जाने में देर हो जाती है। वहां मास्टर की डांट और मार खानी पड़ती है। एक दिन जबर्दस्ती घी लौटाने साहू के यहां जाना पड़ता है। साहू लौटाने से मना कर देता है। सिया-राम की आंखों से आंसू टपक पड़ते हैं। एक साधु यह तमाशा देख रहा था। साधु के कहने पर साहूजी सौदा वापस लेते हैं, अतः साधु के प्रति उसकी श्रद्धा बढ़ जाती है। साधु अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों में सियाराम को फांसने में सफल हो जाता है, यथा — "बच्चा, मेरी माता भी मुझे तीन साल का छोड़कर परलोक सिधारी थीं। तभी से मातृहीन बालक को देखता हूं, तो मेरा हृदय फटने लगता है।" सिया-राम ने पूछा — "आपके पिताने भी दूसरा विवाह कर लिया था?" साधु — "हां बच्चा, नहीं तो आज साधु क्यों होता? पहले पिताजी विवाह न करते थे। मुझे बहुत प्यार करते थे। फिर न जाने क्यों मन बदल गया — विवाह कर लिया। साधु हूं, कटु वचन मुंह से न निकालना चाहिए; पर मेरी विमाता जितनी सुंदर थीं, उतनी कठोर भी। मुझे

दिन-दिन भर खाने को न देती , रोता तो मारती , पिताजी की आँखें भी फिर गईं । उन्हें मेरी सूरत से घृणा होने लगी । मेरा रोना सुनकर मुझे पीटने लगते । अंत में एक दिन घर से निकल खड़ा हुआ । " [27]

इस प्रकार साधु सियाराम के कानों में घर से भाग खड़े होने की बात को डाल देता है । त्रासयुक्त वातावरण के बच्चे घर से भाग खड़े होते हैं यह बात उस साधु परमानंद के मुंह से भी लेखक ने कहलवायी है । "परमानंद — अबकी न भागेगा ; देख लेना । इसकी माँ मर गई है । बाप ने दूसरा विवाह कर लिया है । माँ भी सताया करती है । घर से ऊबा हुआ है ।" हरिहरानंद — " हाँ , यह मामला है , तो अवश्य फंसेगा । दिलासा लगा दिया है न ? " परमानंद — " खूब अच्छी तरह । यह तरकीब सबसे अच्छी है । पहले इसका पता लगा लेना चाहिए कि मुहल्ले में किन-किन घरों में विमाताएं हैं । उन्हीं घरों में फंदा डालना चाहिए । "[28]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचन्दजी ने यह बताया है कि घर-परिवार का भयाक्रांत वातावरण बच्चे को आत्महत्या या घर से भाग जाने के लिए प्रेरित करती हैं । स्वयं मुंशीजी के घर-परिवार में भी ऐसी घटनाएं उनके शैशवकाल में घटित हुई हैं , जिनका उल्लेख पूर्ववर्ती पृष्ठों में हो चुका है । उनके चाचा उदितनारायण को सरकारी गबन के सिलसिले में सात साल की सज़ा हुई थी । बाद में मारे शरम के कहीं भाग गये थ । उनका लड़का आवारा निकल गया और वह भी कहीं भाग गया ।[29] "निर्मला" उपन्यास में जियाराम की आत्महत्या तथा सियाराम के साधुओं के संग भाग जाने की घटना का प्रेमचन्दजी की शैशवकालीन घटनाओं से गहरा संबंध है , ऐसा इन सबसे फलित होता है ।

कई पिता या चाचा-ताऊ शराब पीते हैं और फिर उनके घर में झगड़े होते हैं , कोहराम मचता है । स्वयं प्रेमचन्दजी के दादा गुरसहायलाल में यह बुरी आदत थी । प्रेमचन्दजी के जीवनीकार मदनगोपाल ने इसका संकेत देते हुए लिखा है — " पटवारीजी पियक्कड़ भी थे । उस जमाने में

दो आने की बोतल मिलती थी । ज्यों ही मौका मिलता अपनी पत्नी पर पिल पड़ते । पत्नी बहुत भली थी । चुपचाप मार खाती रहती । [लड़के] माँ को पिटती हुई देखते और सहमकर चुप हो जाते । परंतु दूसरा लड़का महाबीरलाल जो बहुत तगड़ा था, बाप को पकड़कर बैठा देता ।" 30

अजायबलाल में भी पीने की आदत थी । उसका संकेत स्वयं मुंशीजी ने दिया है — " यह तो नहीं कह सकता कि उन्हें शिकायत क्या थी, पर मूंग की दाल खाते थे और सन्ध्या समय शीशे के गिलास में एक बोतल में कुछ उंडेल-उंडेलकर पीते थे । शायद यह किसी तजुर्बेकार हकीम की बतायी हुई दवा थी । दवाएं सब बसानेवाली और कड़वी होती हैं । यह दवा भी बुरी ही थी, पर पिताजी न जाने क्यों इस दवा को मज़ा ले-लेकर पीते थे । हम जो दवा पीते हैं तो आँखें बन्द करके एक ही घूंट में घटक जाते हैं, पर शायद इस दवा का असर धीरे-धीरे पीने में ही होता हो । पिताजी के पास गांव के दो-तीन और कभी-कभी चार-पांच और रोगी भी जमा हो जाते, और घण्टों दवा पीते रहते थे । " 31

"रंगभूमि" उपन्यास में भैरों भी पियक्कड़ है और दारू या ताड़ी पीकर बीवी को मारपीट करता रहता है, जिसके कारण उसके घर का वातावरण बड़ा तनावपूर्ण रहता है । उसके संगी-साथी भी सब ऐसे ही हैं । एक दिन आधी रात को उसे प्याज की धुन सवार होती है । घर में प्याज थी नहीं, तो निर्दोष पत्नी पर पिल पड़ता है — "भैरों ताड़ी के नशे में था । नशे में भी क्रोध का-सा गुण है, निर्बलों पर ही उतरता है । डंडा पास ही धरा था, उठाकर एक डंडा सुभागी को मारा । उसके हाथ की सब चूड़ियां टूट गई । वह घर से भागी । भैरों पीछे दौड़ा । सुभागी एक दूकान की आड़ में छिप गई । भैरों ने उसे बहुत ढूंढा, जब उसे न पाया तो घर जाकर किवाड़ बन्द कर लिए और फिर रात-भर खबर न ली । " 32 भैरों की लड़ाकू प्रकृति के कारण सुभागी को कोई अपने घर में रात-भर का आसरा भी नहीं देता, आखिर

सुरदास ही उसे अपने झोंपड़े में रात भर के लिए आश्रय देता है , जिसके कारण भैरों एवं सुरदास में भी अनबन हो जाती है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि किसी भी कारण से यदि घर का वातावरण तनावभरा रहता है , तो उसका मानसिक प्रभाव छोटे बच्चों पर पड़ता ही है । वे निरंतर डर और भय से आक्रान्त रहते हैं । घर से लगाव होने के स्थान पर , वे घर से भागते हैं । यथासंभव घर से दूर-दूर रहते हैं । इसमें इनके आवारा हो जाने के , घर से भाग जाने के या अन्ततः आखिर जाकर आत्महत्या तक कर लेने के खतरे रहते हैं । प्रेमचन्द ने अपने बचपन में अपने यहाँ , तथा गाँव में पास-पड़ोस में यह सब देखा है , अतः उसका यथार्थ चित्रण उनके उपन्यासों तथा कहानियों में प्राप्त होता है ।

[3] माता की मृत्यु:

बचपन में माँ का स्वर्ग सिधार जाना कोमल-हृदय बच्चे पर वज्राघात से कम नहीं होता । माँ का प्यार सच्चा होता है । उसमें सांसारिक स्वार्थ की बू नहीं होती । गुजराती में एक कहावत है — "माँ ते माँ बीजा बधा वगड़ाना वा " — अर्थात् माँ का स्थान कोई भी नहीं ले सकता , माँ माँ ही है , दूसरे सब जंगल के पवन हैं । गुजराती में एक काव्य-पंक्ति भी है — " जननीनी जोड सखी नव जडे रे लोल | " अर्थात् जननी की बराबरी कोई भी नहीं कर सकता । बाप अपने बच्चों को चाहता है , पर उतना नहीं चाह सकता जितना कि माँ , क्योंकि माँ बच्चे को नौ महीने में अपनी कोख में रखती है । पहले खून और बाद में अपना दूध पिलाती है । अतः उसका प्रेम नैसर्गिक है । बाप का प्रेम सामाजिक है । उसमें स्वार्थ भी निहित है । अतः जब शैशव अवस्था में किसीकी माँ गुजर जाती है , तो उसे ज़िन्दगी की सबसे त्रासद स्थिति समझनी चाहिए , क्योंकि वह मात्र एक दुःख नहीं है , एक दिन का , एक महीने का , एक साल का दुःख नहीं है । वह

दुःखों का एक अनवरत सिलसिला है । बच्चे का खयाल करके बाप यदि दूसरा विवाह न करे , तब भी माँ के प्रेम के लिए वह सदैव तरसता रहता है । दूसरे बच्चों को उनकी माँओं के साथ देखकर वह मन ही मन रोता रहता है । माँ के प्यार की यह कमी एक कसक बन जाती है । उसकी यह इच्छा प्यासी ही रहती है । बचपन में बच्चा सबसे अधिक माँ के पास रहता है । बाप को तो घर-बाहर के हजारों झंझट रहते हैं , अतः चाहकर भी वह उसे पूरा समय नहीं दे सकता ।

यह पहले बताया जा चुका है कि मुंशीजी की माँ का निधन भी बाल्यावस्था में ही हो गया था , अतः जिन्दगीभर वे माँ के प्यार के लिए तड़पते रहे हैं । यह तो अच्छा हुआ कि उनमें दर्द का भाव में जाकर उदात्तीकरण [सब्लिमेशन] हो गया । पर माँ की तड़प तो जिन्दगीभर रही । उसके अभाव में वे आठ-आठ आँसू रोये हैं ।

"कर्मभूमि" उपन्यास में अमरकांत के रूप में मानो प्रेमचन्दजी ही कह रहे हैं — " जिन्दगी में वह उम्र , जब इन्सान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा जरूरत होती है , बचपन है । उस वक्त पौधे को तरी मिल जाय , तो जिन्दगी भर के लिये उसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं । उस वक्त खुराक न पाकर उसकी जिन्दगी खुश्क हो जाती है । मेरी माता का उसी जमाने में देहान्त हुआ , और तबसे मेरी रूह को खुराक नहीं मिली । वह भूख मेरी जिन्दगी है । मुझे जहाँ मुहब्बत का एक रेजा भी मिलेगा , मैं बे-अख्तियार उसीकी तरफ जाऊंगा । कुदरत का अटल कानून मुझे उस तरफ ले जाता है । इसके लिये अगर कोई मुझे खतावार कहे , तो कहे । मैं इसे अपनी खता तसलीम नहीं करता । दुनिया में सबसे बदनसीब वह है , जिसकी माँ बचपन में मर गई हो । "[33]

यह माँ के अभाव की कसक ही है जो "प्रेरणा" कहानी में प्रकारान्तर से व्यक्त हुई है । उसमें लेखक ने मोहन नामक एक ऐसे लड़के का उल्लेख किया है , जिसकी माँ का निधन सात साल की अवस्था में

हो गया था -- "बच्चों में प्यार की जो एक भूख होती है -- दूध, मिठाई और खिलौनों से भी ज्यादा मादक -- जो मां की गोद के सामने संसार की निधि की भी परवाह नहीं करती। मोहन की वह भूख कभी संतुष्ट न होती थी। पहाड़ों से टकराने वाली सारस की आवाज़ की तरह वह ध्वनि सदैव उसकी नसों में गूंजा करती थी। जैसे भूमि पर फैली हुई कोई लता कोई सहारा पाते ही उससे चिपट जाती है, वही हाल मोहन का था।"[34]

सारे जहां की बादशाहत बच्चे को मां की गोद में मिल जाती है। "ईदगाह" कहानी के हामिद को तो पता ही नहीं है कि उसके मां-बाप मर चुके हैं। दादी अमीना ने किसी तरह उसे बहला-फुसलाकर रखा है। वह सोचता है -- "उसके अब्बाजान रुपये कमाने गये हैं। बहुत-सी थैलियां लेकर आयेंगे। अम्मीजान अल्लाहमियां के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीज़ें लाने गई हैं।"[35] इसलिए हामिद प्रसन्न है। वह अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। अमीना गरीब है, पर दिल की दौलत से तो मालामाल है, और इसलिए हामिद भी। ऊपर कहा गया है कि मां की बहुत×मादक×होती भूख बड़ी मादक होती है। उसके आगे मिठाई, खिलौने इत्यादि कुछ मायना नहीं रखते। इस सत्य को हम "ईदगाह" कहानी में परिचित होते हुए देखते हैं, जब हामिद अपनी सारी इच्छाओं का गला घोंटकर दादी के लिए मेले से चिमटा लाता है, क्योंकि रोटी बनाते हुए दादी के हाथ जल जाते थे। दूसरे बच्चे जब मिठाई खाते हैं, तब क्या हामिद का मन नहीं करता होगा। कुछ बच्चे तो उसे दिखा-दिखा कर खाते हैं और उसे चिढ़ाते भी हैं। यही बात खिलौनों को खरीदते समय होती है। दूसरे बच्चे तरह-तरह के खिलौने खरीदते हैं। तब भी हामिद किसी तरह अपने मन को जब्त करता है और अंत में तीन पैसों से (उतने ही पैसे उसके पास थे) वह चिमटा खरीदता है -- दादीमां के लिए। हामिद मां के अभाव की पूर्ति दादीमा से कर लेता है, पर सब बच्चे तो इतने भाग्यवान नहीं होते।

माँ की गोद के अभाव की कसक को "घर जमाई" नामक कहानी में लेखक ने इस प्रकार व्यक्त किया है — " बच्चों के लिए बाप एक फालतू-सी चीज़ है — एक विलास की वस्तु है । जैसे घोड़ों के चने और बाबुओं को मोहनभोग ..., लेकिन माँ तो बच्चे का सर्वस्व है । बालक एक मिनट के लिए भी उसका वियोग नहीं सह सकता । पिता कोई हो , उसे परवाह नहीं । केवल उसे एक उछालने-कुदाने वाला आदमी होना चाहिए ; लेकिन माता तो अपनी ही होनी चाहिए , सोलहों आने अपनी । वही रूप, वही रंग , वही प्यार , वही सबकुछ । अगर वह नहीं है , तो बालक के जीवन का स्रोत जैसे सूख जाता है , फिर वह शिव का नंदी है , जिस पर फूल जल चढ़ाना लाज़िमी नहीं , अख़्तियारी है । " 36

मातृविहीन बच्चे को माँ की याद पग-पग पर कसकती है । "निर्मला" उपन्यास का सियाराम भी माँ के प्रेम एवं शीतल आश्रय के लिए तड़पता है । यथा — " मातृहीन बालक के समान दुःखी-दीन प्राणी संसार में दूसरा नहीं होता । और सारे दुःख भूल जाते हैं । बालक को माता याद आई । अम्मा होतीं तो क्या आज मुझे यह सब सहना पड़ता ? भैया चले गए ; मैं ही अकेला यह विपत्ति सहने के लिए क्यों बच रहा ? सियाराम की आँखों से आँसू की झड़ी लग गई । उसके शोक-कातर कंठ से एक गहरे निःश्वास के साथ मिले हुए शब्द निकल आए — अम्माँ ! मुझे क्यों भूल गईं , मुझे क्यों नहीं बुला लेतीं ? " 37

सियाराम के उक्त शब्दों में मातृविहीन बच्चे की समग्र वेदना को मुंशीजी ने उड़ेल दिया है । यह बिसूरना सियाराम का नहीं , प्रत्युत मुंशीजी का है , ऐसी प्रतीति सहजतया हुए बिना नहीं रहती ।

अतः कहा जा सकता है कि बचपन में माता की मृत्यु का हो जाना शिशुकालीन जीवन के संघर्षों में सबसे ऊपर है , क्योंकि और तमाम प्रकार के दुःखों को बच्चा झेल लेता है , पर माता के अभाव की [illegible] उसके लिए नागवार गुजरता है ।

(घ) विमाता का भय :

वैसे यह मुद्दा भी ऊपर वाले से जुड़ा हुआ है, परंतु अलग लेने का कारण यह है कि सभी घटनाओं में पिता दूसरा विवाह कर लेते हों ऐसा नहीं है। परंतु पिता विवाह न करे, उस अवस्था में भी बच्चे को माँ के प्रेम की कमी तो खलती ही है। कई बार माता और पिता दोनों मर जाते हैं, लगभग साथ-साथ, तब पिता के दूसरे विवाह का प्रश्न ही सामने नहीं आता, जैसे "ईदगाह" कहानी में हामिद के माता-पिता दोनों मर जाते हैं। "रंगभूमि" उपन्यास में सूरदास जिस बच्चे को पालता-पोषता है, वह बच्चा मिट्ठू या मिठुवा, भी इसी स्थिति में है। उसके भी माँ-बाप मर गये हैं। परंतु "ईदगाह" में अमीना और "रंगभूमि" में सूरदास के कारण क्रमशः हामिद और मिठुवा का जीवन अधिक दुःखपूर्ण नहीं होता, यह एक दीगर बात है।

परंतु माँ की मृत्यु के बाद पिता जब दूसरा विवाह रचा लेता है, तब तो प्रायः बच्चे का जीवन नरकतुल्य ही हो जाता है। जब दूसरी माँ आती है, तब पिता तीसरा हो जाता है। इसके कई सामाजिक मनोवैज्ञानिक कारण हैं। इधर विधवा-विवाह या त्यक्ता-विवाह होने लगे हैं, अतः बहुत संभव है कि विधुर पुरुष को उसके जोड़ की, समानशील स्त्री विवाह के लिए मिल जाय। और तब शायद बच्चों की यातना में कुछ कमी आये, यह संभव है। इधर साठ के बाद के उपन्यासों में ऐसी कुछ माएँ चित्रित हुई भी हैं, जहाँ "स्टेप-मदर" का चित्रण परंपरागत ढंग से न होकर उसके उजले पक्षों को भी उद्घाटित करनेवाला रहा है। ऐसे उपन्यासों में "मेरे संधिपत्र" (सूर्यबाला सिंह), "पाषाण-युग" (मालती जोशी) तथा "रुकोगी नहीं राधिका ?" (उषा प्रियंवदा) आदि उपन्यास आते हैं।[38]

परंतु प्रेमचन्द के समय की बात कुछ और थी। उस समय दुहाजू तिहाजू और प्रौढ़ एवं वृद्ध पुरुष भी प्रायः कमसीन लड़कियों से विवाह करते थे। शरतबाबू के बहुचर्चित उपन्यास "देवदास" की पारो उसका ज्वलंत उदाहरण है। ऐसे विवाहों के पीछे दहेज भी कारणभूत होता है।

विमाता कोई डायन नहीं होती है, परंतु विमाता बच्चों को शारीरिक, मानसिक त्रास देती है यह प्रायः देखा गया है। ऐसा न हो तो ही आश्चर्य है। इसके पीछे कई सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कारण कार्य करते हैं। दहेज के कारण यदि मां-बाप बूढ़े बाल-बच्चों वाले आदमी से किसी किशोरी का ब्याह कर देते हैं, तब वह किशोरी अपने भीतर एक ज्वालामुखी लेकर आती है। मां-बाप को, समाज को, पति को वह कुछ नहीं कह सकती। पति उम्र में बड़ा होता है, अतः शुरू में वह उससे डरती भी है, फलतः उसके भीतर के लावा का भोग छोटा बच्चा बनता है। गुजराती में एक कहावत है कि "घोड़ाने न दमाय तो गधेडाने दामो", अर्थात यदि बलवान को हम सज़ा नहीं दे सकते तो कमजोर को दो। बच्चा निरीह और कमजोर होता है, अतः नवयौवना के क्रोध का शिकार वही बनता है।

विमाता के त्रास के पीछे यौनत्मनोविज्ञान भी कार्य करता है। एक नवयौवना को शारीरिक दृष्टि से परितृप्त करना वयोवृद्ध व्यक्ति के लिए संभव नहीं होता, दूसरे वह स्वयं भी ऐसा ही सोचता है। अतः नवयौवना की यौन-अभुक्ति क्रोध के रूप में संचित होती रहती है। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास "रेखा" की रेखा उसका उदाहरण है। वह बीस वर्ष की है और प्रो. प्रभाशंकर लगभग पचास के। यह तो अच्छा है कि प्रोफेसर अविवाहित थे, अतः उन्हें अपनी पत्नी से कोई बच्चा नहीं था। अन्यथा रेखा के आंतरिक क्रोध का शिकार वह हो सकता था। प्रेमचन्द के उपन्यासों में सुमन (सेवासदन) तथा निर्मला (निर्मला) ऐसी नारियां हैं जिनका विवाह दहेज के कारण अपात्र व्यक्तियों से होते हैं। गजाधर के पहले की कोई संतान नहीं थी, अतः सुमन का गुस्सा उसी पर फूटता रहता है। निर्मला के अपनी सौत से तीन पुत्र थे — मंसाराम, जियाराम और सियाराम। निर्मला का पति तोताराम उम्र में निर्मला से काफी बड़ा था। अतः वह निरंतर निर्मला को लेकर शंकित रहता है और उसके आगे अपनी बहादुरी के मन-गढन्त किस्से भी सुनाता रहता है [39] तथा यौन-शक्ति बढ़ाने के कृत्रिम प्रयोग भी करता रहता है। [40]

बुढ़ापा तथा वयोवृद्ध होने के कारण तोताराम निर्मला को प्रसन्न रखने के लिए हर संभव कोशिश करता है । हिन्दी भाषी क्षेत्रों में एक कहावत-सी प्रचलित है — " दुजवर को ब्याहूंगी , पलका बैठा राज करूंगी , बोलेगा तो झट मर जाऊंगी ।" इसलिए ऐसी स्थिति में कई बार स्त्री अपनी उचित-अनुचित सभी बातें मनवा लेती है । स्त्री अपने घाटे के सौदे की पूर्ति इस प्रकार कर लेती है और पुरुष अपनी कमजोरी छिपाने के लिए या उसकी क्षतिपूर्ति के लिए स्त्री को तरह-तरह से प्रसन्न करने की चेष्टा करता है । इसका दुष्प्रभाव बच्चों पर पड़ता है । जियाराम या सियाराम को लगता है कि उनके पिता अब उनकी चिंता नहीं करते बल्कि नयी माँ को खुश रखने के भरसक प्रयत्न करते हैं ।

इस समस्या का एक आयाम यह भी होता है कि जिन बच्चों के विमाता होती है , समाज के दूसरे लोग , नाते-रिश्तेदार आदि उन बच्चों से विशेष सहानुभूति जताते हैं , उनके आगे विशेष प्रेम का प्रदर्शन करते हैं , प्रायः उनके आगे विमाता की बुराई करते हैं । इसका परिणाम यह आता है कि बच्चे सचमुच में विमाता को खराब समझने लगते हैं । जिन बच्चों के सगी माँ होती है , उनको कभी नहीं पूछा जाता कि तुम्हारी माँ तुम्हें कैसे रखती है ? पर जिस बच्चे के विमाता होती है उसे छोटे-बड़े हर व्यक्ति यही सवाल करता है । इसका भी बुरा परिणाम बच्चों के दिमाग पर पड़ता है । "विमाता" कहानी में नायक "मैं" की पत्नी मर जाती है । अम्मा नामक युवती को वह ब्याह लाता है । और वह सचमुच में उसे माँ का प्यार देती है । परंतु लोग उसे जब-तब पूछते रहते हैं कि तुम्हारी माँ तुम्हें कैसे रखती है । एक बार ज्वालासिंह के पूछने पर मुन्नू (बच्चा) रोने लगता है । उसे रोने का कारण पूछा जाता है , तब वह आंख में धुआं लग जाने की बात करता है , परंतु बच्चे के बाप के मन में शंका बैठ जाती है । अतः घर जाकर वह उससे पुनः पूछता है और बच्चा जो जवाब देता है उससे वह अवाक् रह जाता है और अम्मा के प्रति उसका मान और बढ़ जाता है । बच्चे का जवाब था — " जी नहीं वह मुझे प्यार करती है । इसी कारण मुझे बारंबार

रोना आता है । मेरी अम्मां मुझे बहुत प्यार करती थीं । वह मुझे छोड़कर चली गयीं । नयी अम्मां उससे भी ज्यादा प्रेम करती हैं । इसलिए मुझे भय लगता है कि उसकी तरह यह भी मुझे छोड़कर न चली जाय । " 5।

गुजराती में कहावत है -- "सारांनुं मानस लांबुं नथी" -- अर्थात् संसार में अच्छे मनुष्य की जल्दी मृत्यु हो जाती है । "हुम ही नेक गोड ब्लेस यंग" -- पवित्र आत्माएं इस संसार में चिरकाल तक नहीं ठहरतीं । और सचमुच ऐसा हुआ , कुछ महीनों के बाद अम्मा की मृत्यु हो गई । थोड़ा अच्छी विमाता मिली तो ठहरी नहीं । गुजराती के लेखक रमणलाल वसंतलाल देसाई की कहानी "खरी मा" की विमाता भी अच्छी बताई है ।

वैसे "निर्मला" उपन्यास की निर्मला प्रारंभ में तो अच्छी बताई है , परंतु मंसाराम की मृत्यु और जियाराम की आत्महत्या के पश्चात् उसका स्वभाव थोड़ा बदल जाता है । बच्ची का जन्म होता है , अतः वह अतिरिक्त कृपणता पर उतर आती है । उसकी समझ के अनुसार तो वह ठीक करती है , परंतु सियाराम को यही लगता है कि विमाता होने के कारण वह उसे त्रास देती है ।

"कर्मभूमि" उपन्यास में भी विमाता के त्रास का जिक्र आता है -- " अमरकान्त की माता का उसके बचपन में ही देहान्त हो गया । समरकान्त ने मित्रों के कहने-सुनने से दूसरा विवाह कर लिया था । उस सात साल के बालक ने नई मां का बड़े प्रेम से स्वागत किया ; लेकिन उसे जल्द मालूम हो गया , कि उसकी नई माता उसकी ज़िद और शरारतों को उस क्षमादृष्टि से नहीं देखती जैसे उसकी मां देखती थी । वह अपनी मां का अकेला लाड़ला था । बड़ा ज़िद्दी , बड़ा नटखट । जो बात मुंह से निकल जाती , उसे पूरा ही करके छोड़ता । नई माताजी बात-बात पर डांटती थीं । यहां तक कि उसे माता से द्वेष हो गया । जिस बात को वह मना करती , उसे अदबदा कर करता । पिता से भी ढीठ हो गया । पिता और

सुख में प्रेम का बंधन न रहा।" [42]

निश्चय ही यह प्रेमचन्दजी की ही आत्मकथा है। वे भी अपनी मां के इकलौते लाडले थे और उनकी मां भी उनकी ज़िदों को पूरी करती थीं। "आशीर्वाद" कहानी में भी इसी बात को कुछ अधिक स्पष्ट एवं शब्दों में अभिव्यक्त किया है —

"भोला महतो ने पहली स्त्री मर जाने पर दूसरी सगाई की तो उसके लड़के रग्घू के लिए बुरे दिन आ गये। रग्घू की उम्र उस समय केवल दस वर्ष की थी। चैन से गांव में गुल्ली-डण्डा खेलता फिरता था। मां के आते ही चक्की में जुतना पड़ा। पन्ना रूपवती स्त्री थी और रूप और गर्व में चोली-दामन का नाता है। वह अपने हाथों से कोई मोटा काम न करती। गोबर रग्घू निकालता, बैलों को सानी रग्घू देता। रग्घू जूठे बरतन मांजता। भोला की आंखें कुछ ऐसी फिरीं कि उसे अब रग्घू में सब बुराइयां-ही-बुराइयां नज़र आतीं। पन्ना की बातों को वह प्राचीन मर्यादानुसार आंखें बन्द करके मान लेता था। रग्घू की शिकायतों की ज़रा भी परवाह न करता। नतीजा यह हुआ कि रग्घू ने शिकायत करना ही छोड़ दिया। किसके सामने रोये? " [43]

ऐसी स्थिति में बच्चे कई बार जरूरत से ज्यादा समझदार हो जाते हैं। रग्घू, होरी और प्रेमचन्द इसके उदाहरण हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि बाप ताव में आकर नई मां को कुछ भला-बुरा सुना देता है। पर बाद में ताव उतरने पर वह उसकी खुशामद करता है और उसकी हर उचित-अनुचित बात पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगाता चलता है। परिणामतः वह और भी बवंडर हो जाती है और बच्चे को और भी सताती है। धीरे-धीरे बच्चा इस बात को समझने लगता है और वह शिकायत करना ही छोड़ देता है, बल्कि बाप के पूछने पर भी टाल जाता है। इस मनस्थिति का अच्छा चित्रण "सौतेली मां" कहानी में हुआ है। इसके एक-एक शब्द में मानो प्रेमचन्द का दर्द कराह रहा है। सर्वाधिक करुणोत्पादक दृश्य तो वह है, जहां बच्चा दीवार की ओर मुंह करके रो रहा है; लेकिन बाप के आने पर झटपट आंखें

रोने लगता है । बाप जब पूछता है —" तू रोता क्यों था ? क्या तुझे तेरी माँ ने पीटा था ? तो बच्चा जवाब देता है — " नहीं , वह तो बहुत अच्छी है । " 44

संक्षेप में कहा जा सकता है कि बचपन में विमाता के त्रास के कारण बालकों के जीवन में विष घुल जाता है । उनका जीवन नरक-तुल्य हो जाता है । प्रेमचन्द इस अनुभव से गुजरे हैं । अतः उनके साहित्य में ऐसे स्थान सार्थकता से उभर कर आये हैं ।

(घ) पिता की उपेक्षा :

यह ऊपर बताया गया है कि प्रथम पत्नी की मृत्यु के बाद पुरुष जब दूसरा विवाह करता है , और खास करके बाल-बच्चों वाला वयोवृद्ध व्यक्ति विवाह करता है , तब वह एक सिरे से नयी पत्नी का गुलाम-सा हो जाता है । प्रथम पत्नी को खोने के बाद उसे एक मानसिक डर-सा बैठ जाता है । दूसरे वह स्वयं को भी पहचानने लगता है कि स्त्री के बिना वह नहीं रह सकता । अतः इस दूसरी स्त्री के साथ वह नरमी से पेश आता है । धीरे-धीरे उसका ध्यान बच्चों से हटने लगता है । शुरू-शुरू में शायद वह बच्चों का पक्ष भी ले , परंतु अनुभव से वह समझने लगता है कि उससे घर में कलह ही बढ़ता है । अतः वह अपनी आँखें फेर लेता है , "अलग्योझा" के भोला महतो की तरह , "कर्मभूमि" के समरकांत की तरह , "निर्मला" के तोताराम की तरह ।

फलतः एक ठण्डा उपेक्षाभाव जन्म लेने लगता है — बाप और बच्चों के बीच । यह उपेक्षाभाव द्विपक्षी होता है । शुरू में उपेक्षा बाप की तरफ से होती है । बाद में बच्चा भी बाप की उपेक्षा करने लगता है । बच्चे में एक भीतरी घृणा का भाव पैदा होने लगता है । उसे विमाता और पिता से दोनों से नफरत होने लगती है । यह घृणा-भाव अंतःसलिला की भाँति मन के भीतर-ही-भीतर बहता रहता है और समय आने पर बातों या कामों में अभिव्यक्त होता है । पूर्ववर्ती पृष्ठों में भलीभाँति

बताया गया है कि प्रेमचन्दजी को उनके पिताजी के द्वारा दुबारा विवाह करना कोई पसंद नहीं आया था । अतः उनके साहित्य में जहां-जहां भी कोई ऐसा स्थान आया है, वहां उन्होंने इस बात की आलोचना की है । "कर्मभूमि" का अमरकांत अपने बाप समरकांत से विद्रोह करता है, उसके पीछे भी यही कारण है ।

"बूढ़ा" कहानी में लेखक ने एक ऐसे व्यक्ति का मखौल उड़ाया है, जो जीवन की उत्तरावस्था में दुल्हा बनकर शादी करने चला है — "चौबेजी की सजधज आज देखने योग्य है । तनजेब का रंगीन कुरता, कतरी और संवारी हुई मूँछें, खिजाब से चमकते हुए बाल, हंसता हुआ चेहरा, चढ़ी हुई आँखें — यौवन का पूरा स्वांग था । "[45]

"निर्मला" उपन्यास में मुंशी तोताराम निर्मला का दिल जीतने के लिए जो स्वांग करते हैं, वहां पर भी मुंशीजी का व्यंग्य ही झलकता है । यहां भी लेखक का अभिप्राय यही है कि तीन-तीन बेटे हैं, घर में काम के लिए सिर्फ कठिन है, क्या आवश्यकता थी मुंशी तोताराम को नया ब्याह रचाने की ?

पिता की असमय मृत्यु के कारण निर्मला की माँ सस्ते में निर्मला को निपटाने के लिए प्रौढ़ वय के तोताराम से उसका ब्याह कर देती है । पहले निर्मला का विवाह कहीं और तय था । अतः निर्मला का तृषित हृदय प्रणय की ओर से निराश होकर बच्चों में किसी प्रकार सांत्वना ढूंढने का प्रयास करता है । तोताराम के साथ हंसने-बोलने में उसे संकोच, अरुचि एवं अनिच्छा होती थी । तोताराम उसे अपनी उपेक्षा समझते हैं और दो-एक अंतरंग मित्रों से बात करते हैं । वे लोग तोताराम को जो सलाह देते हैं उसके वर्णन में लेखक ने कड़े व्यंग्य - [illegible] द्वारा चलाए हैं । तोताराम का एक मित्र है — नयन । तो देखिए नयनबाबू क्या सलाह देते हैं — " तो फिर रंगीलेपन का स्वांग रचो । यह ढीलाढाला कोट फेंको ; तनजेब की चुस्त अचकन हो, चुन्नटदार पाजामा, गले में सोने की जंजीर पड़ी हुई, सिर

पर जयपुरी साफा बंधा हुआ, आँखों में सुर्मा और बालों में हीना का तेल पड़ा हुआ। तोंद का पिचकना भी जरूरी है। दोहरा कमरबंद बांधो। जरा तकलीफ़ होगी, पर अचकन सज उठेगी। खिजाब मैं लगा दूंगा। सौ-पचास गज़लें याद कर लो। मौके-मौके से शेर पढ़ो। बातों में रस भरा हो, ऐसा मालूम हो कि तुम्हें दीन और दुनिया की कोई फ़िक्र नहीं है। बस जो कुछ है, प्रियतमा ही है। जवांमर्दी और साहस का काम करने का मौका ढूंढते रहो। रात को झूठ-मूठ शोर करो — चोर-चोर और तलवार लेकर अकेले पिल पड़ो। हाँ, ज़रा मौका देख लेना, ऐसा न हो कि सचमुच कोई चोर आ जाय और तुम उसके पीछे दौड़ो, नहीं तो सारी कलई खुल जायेगी और मुफ्त में उल्लू बनोगे। उस वक्त तो जवांमर्दी इसी में है कि दम साधे पड़े रहो, जिससे वह समझे कि तुम्हें खबर ही नहीं हुई। लेकिन ज्यों ही चोर भाग खड़ा हो, तुम भी उछलकर बाहर निकलो और तलवार लेकर 'कहाँ? कहाँ?' करके दौड़ो। ज्यादा नहीं, एक महीने मेरी बातों का इम्तहान करके देखो। अगर तुम्हारा दम न भरने लगें तो जो जुर्माना कहो, वह दूं।'[46] इसके बाद मुंशी तोताराम अपनी दिलेरी और बहादुरी के जो स्वांग भरते हैं उसका वर्णन लेखक ने खूब रस ले-लेकर किया है।

ऐसा नहीं है कि कोई लेखक अपने जीवन के कटु अनुभवों के कारण वैसे ही चित्र और चरित्र देता रहे। पिता से उपेक्षा के कारण वह अपने साहित्य में अपने पिता के प्रतिरूप के स्थान पर उसका उसका प्रतिगामी रूप अर्थात् आदर्श-रूप भी दे सकता है, मानो दिखाना चाहते हो — देखो यह होता है पिता का असली चेहरा, देखो यह होता है पति। यह नहीं कि पत्नी की चिता भी शांत नहीं हुई और दूसरा ब्याह रचा लिया। "स्मृति का पुजारी" कहानी का हीरीलाल ऐसा ही एक आदर्श पिता और पति है :—

महाशय हीरीलाल की पत्नी का जब से देहांत हुआ, वह

एक तरह से दुनिया से विरक्त हो गए हैं। ... जब उनकी स्त्री जीवित थी, तब कुछ और ही बात थी। किसी-न-किसी बहाने से आये दिन मित्रों की दावतें होती रहतीं। कभी गार्डन पार्टी है, कभी संगीत है, कभी जन्माष्टमी है, कभी होली है। ... कोई संतान नहीं न थी; लेकिन किसीने उन्हें दुःखी या निराश नहीं देखा। मुहल्ले के सारे काम उन्हीं करते थे। .... और तब महाशयजी का पैंतालीसवाँ साल था, सुगठित शरीर था, स्वास्थ्य अच्छा, रूपवान, विनोदशील, संपन्न। चाहते तो तुरंत दूसरा ब्याह कर लेते। उनके हाँ करने की देर थी। ब्याह के वास्ते कन्यावालों ने संदेश भेजे, मित्रों ने भी उजड़ा घर बसाना चाहा; पर इस स्मृति के पुजारी ने प्रेम के नाम को दाग न लगाया।"[47]

यहाँ जितने भी हीरीलाल के लक्षण बताए हैं वे सब अजायबलाल से विपरीत पड़ते हैं। अजायबलाल के संतान थीं। उम्र भी हीरीलाल से ज्यादा थी। आमदनी अधिक न थी। स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं था। वे दूसरा विवाह न करते तो कुछ बिगड़नेवाला नहीं था। मुंशी हीरीलाल ने दूसरा ब्याह नहीं किया, इसलिए वे प्रेमचन्द की श्रद्धा और सम्मान के पात्र हैं। ठीक इसी प्रकार प्रेमचन्द ने अच्छी विमाताओं का चित्रण भी किया है और वस्तुतः देखा जाय तो प्रेमचन्द की वस्तुवादी दृष्टि विमाताओं का कोई खास दोष भी नहीं देखती थी। वे तो बेचारी परिस्थिति के शिकार ही थीं। स्वयं प्रेमचंद की विमाता ने कौन-सा सुख भोग लिया। सात-आठ साल में तो अजायबलाल स्वर्ग सिधार गये। अतः ठीक "अलग्योझा" के रग्घू की भाँति प्रेमचन्द भी अपनी चाची (विमाता को वे चाची कहते थे) को आजीवन संभालते रहे। उनके बच्चों की भी देखभाल करते रहे। वस्तुतः उन्हें गुस्सा अपने पिता पर आता था —

" आखिर क्या पड़ी थी मुंशी अजायबलाल को जो बेटी-बेटे के रहते हुए बुढ़ौती में जाकर दुबारा ब्याह किया? सेहत भी अपकी आला-अव्वल थी, रोज गिलसिया भर दारू न चढ़ाते तो

तो खाना-पीना दूभर हो जाता, लेकिन शादी करने से बाज न आये। ... अजी छोड़िये भी, ऐसी भी क्या हवस कि उस पर इंसान काबू न रख सके, अब भी तो आपको मुलाहिजा फ़रमाइए, पचास लाख का आपका मिल है और आप चले हैं फिर ब्याह रचाने। " 58

शैशवकालीन संघर्ष के उक्त आयामों से कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। जहाँ बच्चे को माता-पिता की ओर से प्रेम और स्नेह नहीं मिलता, वहाँ उसके लिए वह तरसता है। उसकी आपूर्ति कई बार वह दादी या बुआ के रूप में कर लेता है। अतः प्रेमचन्दजी के लेखन में ऐसे पात्र प्रायः उभर कर आते हैं। "ईदगाह" कहानी की अमीना और "निर्मला" की रुक्मिणी ऐसे ही पात्र हैं। "रंगभूमि" में मिठुआ को सूरदास मिल जाता है। "प्रेमा" के मोहन को सूर्यप्रकाश मिल जाता है।

अन्ततः अध्याय के समग्रावलोकन के पश्चात् हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं :—

§1§ किसी भी लेखक के जीवन में शैशवकालीन संघर्षों व अनुभवों का महत्व अपरिहार्य होता है। शैशव में जो अक्स पड़ जाते हैं तमाम उम्र के लेखन में उसके निशान किसी-न-किसी रूप में मिलते ही हैं। अतः किसी भी लेखक के साहित्य और उसके अभिप्रायों को समझने के लिए उसके बचपन का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

§2§ शैशवकालीन संघर्ष का प्रभाव लेखक पर दुतरफा होता है। एक तरफ तो वह ऐसे लोगों के प्रतिरूप अपने साहित्य में रखता है, जिनसे उसे बचपन में बड़ी तकलीफ पहुँची है; और दूसरी तरफ उसकी विसदृशता §कोन्ट्रास्ट§ के रूप में वह कुछ प्रतिलोमी चरित्रों को प्रस्तुत करता है जिससे उसके अन्तर्मन की क्षतिपूर्ति होती है।

§3§ बच्चे के जीवन में प्यार का ही महत्त्व होता है। माँ-बाप का प्यार हो तो बच्चा गरीबी और महा दरिद्रता में भी खुश रह सकता है। परंतु गरीबी के कारण जिन घरों में तनाव रहता है

जहाँ अपने स्नेह से वंचित रह जाते हैं और फलतः उन्हें नारकीय यातनाओं से गुज़रना पड़ता है । प्रेमचन्दजी ने भी इस प्रकार के अभाव को देखा और जिया है, अतएव उनके साहित्य में इस प्रकार के बच्चे बहुतायत से आये हैं ।

(5) भयाक्रांत वातावरण बच्चों के मानसिक विकास का गला घोंट देता है । ऐसे में बच्चे अक्सर भाग जाते हैं या आत्महत्या का रास्ता अख़्तियार कर लेते हैं । प्रेमचन्द ने भी अपने शैशवकाल में ऐसे अनेक रूपों को भोगा होगा, क्योंकि यह सब उनके कथा-साहित्य में प्रतिबिंबित हुआ है ।

(5) माता की मृत्यु, विमाता का आगमन, पिता की उपेक्षा ये सब शैशवजीवन की भयंकर विभीषिकाएं हैं । स्वयं प्रेमचन्दजी ने इन स्थितियों को भोगा है, अतः उनका बड़ा यथार्थ चित्रण उनके साहित्य में उपलब्ध होता है ।

===== XXXXXX ======

:: संदर्भिका ::

{1} द्रष्टव्य : मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन : डा. [illegible] : पृ. 31 ।

{2} मनोवैज्ञानिक हिन्दी उपन्यास : डा. पारुकांत देसाई : पृ. 118 ।

{3} द्रष्टव्य : "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार" : डा. मन्मथनाथ गुप्त : पृ. 167 ।

{4} "यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैव तदु सुप्तस्य तथैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

: यजुर्वेद : 30-1

{5} निर्मला : प्रेमचन्द : पृ. 84 ।

{6} मानसरोवर : भाग-5 : पृ. 113 ।

{7} वही : पृ. 114 ।

{8} द्रष्टव्य : कलम का सिपाही : पृ. 21 ।

{9} मानसरोवर : भाग-3 ।

{10} प्रेम-पूर्णिमा : प्रेमचन्द : पृ. 33 । {11} वही : पृ. 27 ।

{12} मानसरोवर : भाग -1 : पृ. 37 {13} वही : पृ. 49 ।

{14} मंजूषा : सं. अमृतराय : पृ. 19 ।

{15} रंगभूमि : पृ. 17-19 ।

{16} कलम का सिपाही : पृ. 13 ।

{17} मानसरोवर : भाग-5 : पृ. 149-150 । {18} वही : पृ. 152 ।

{19} मानसरोवर : भाग-7 : पृ. 65 ।

{20} द्रष्टव्य : निर्मला : पृ. 123-139 ।

{21} मानसरोवर : भाग-8 : पृ. 8 ।

{22} मानसरोवर : भाग-5 : पृ. 121 ।

{23} वही : पृ. 117 । {24} वही : पृ. 118-119 ।

{25} मानसरोवर : भाग-8 : पृ. 145 ।

{26} निर्मला : पृ. 128-129 । {27} वही : पृ. 134-135 ।

{28} वही : पृ. 136 ।

§29§ द्रष्टव्य : कलम का मजदूर : पृ. 16 । §30§ वही : पृ. 15 ।

§31§ कलम का सिपाही : पृ. 19 ।

§32§ रंगभूमि : पृ. 125 । §33§ कर्मभूमि : पृ. 114-115 ।

§34§ मानसरोवर : भाग-4 : पृ. 15 ।

§35§ [illegible] : पृ. 44 ।

§36§ मानसरोवर : भाग-1 : पृ. 147 । §37§ निर्मला : पृ. 132 ।

§38§ द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : पृ. 132 ।

§39§ द्रष्टव्य : निर्मला : पृ. 50-51 ।

§40§ वही : पृ. 50-51 ।

§41§ मानसरोवर : भाग-8 : पृ. 142 ।

§42§ कर्मभूमि : पृ. 13 ।

§43§ मानसरोवर : भाग-1 : पृ. 13 ।

§44§ द्रष्टव्य : प्रेमचन्द जीवन कला और कृतित्व : डा. हंसराज रहबर : पृ. 7 । §45§ वही : पृ. 7 ।

§46§ निर्मला : पृ. 49 ।

§47§ मानसरोवर : भाग-4 : पृ. 296-297 ।

§48§ कलम का सिपाही : पृ. 46-47 ।

====== xxxxxxx ======